## अनुक्रम


» ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा संग्रह 'घुसपैठिये' में चित्रित दलित जीवन की समस्याएँ
डॉ. ममता सिंह 06

» बाजार के बवंडर में स्त्री
डॉ. अखिलेश गुप्ता 08

» मध्ययुगीन भक्ति - आन्दोलन : प्रयोजन तथा प्रभाव
रेखा कुमारी 10

» अमरकांत की कहानियों में भाषा और शिल्प का महत्व
अंजनीशरण गुप्ता 13

» विश्व में हिंदी की स्थिति (मॉरिशस के विशेष संदर्भ में)
सुशील कुमार 15

» निराला के काव्य में समाज दर्शन
विभीषण कुमार 17

» निराला के काव्य में मानवतावाद
डॉ. नीलम पाण्डेय 20

» भाषा, जाति एवं राष्ट्रीयता और डॉ. रामविलास शर्मा
डॉ. अनामिका कुमारी 24

» काशीनाथ सिंह और रेहन पर रग्घू में नवचेतना
प्रेरणा 26

» प्रेमचंद साहित्य : दलित और स्त्री अस्मिता का सवाल
डॉ. ओम प्रकाश 28

» वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना : एक अनुशीलन
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा 31

» बाल कोमलता और बदलता साहित्य
आरती पाल 34

» युगचेता कवि कबीर की सामाजिक चेतना
डॉ. नीलम पाण्डेय 38

» नवगीत की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ
डॉ. अरूण कुमार 42

» समकालीन कविता के सरोकार
डॉ. रामचरण पांडेय 47

» 'दर्दपुर' : विस्थापन की त्रासदी और स्त्री
पूजा यादव 50

» उषा प्रियंवदा की कहानियों में पात्रों के सामान्य - असामान्य पक्ष
डॉ. रीता कुमारी 53

» विद्यापति के शिव और उनके विभिन्न रूप (विशेष संदर्भ हिंदी पदों में)
गायत्री कुमारी 56

» 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में नारी चेतना
अंशु कुमारी 59

» हंसकुमार तिवारी एवं उनका कथा - साहित्य
डॉ. श्वेत प्रकाश 61

» जैनेन्द्र के कथा - साहित्य की विशिष्टता
अमृता प्रीतम 64

» हिन्दी साहित्य में दलित आत्मकथाएँ - एक विश्लेषात्मक अध्ययन
डॉ. सुचिन्ता कुमारी 66

» राजनीतिक भ्रष्टाचार और हिन्दी काव्य
डॉ. सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह 68

» राजेश जोशी की कविता में पर्यावरणीय चेतना
पीयूष कुमार 71

» रेणु की आंचलिक भाषा
चन्द्रकान्त सिंह 74

» निमाड़ अंचल की जनजातीय संस्कृति एवं परम्परा
प्रमिला सेनानी
शोध निर्देशक - डॉ. मनजीत अरोरा 77

» भारतीय प्रवासी मजदूरों की मर्मलिपि - 'लाल पसीना'
डॉ. दयानिधि सा 79

» जैन साहित्यों में वर्णित आर्थिक जीवन
डॉ. राजेश नंदन 82

» स्वतंत्रता के पश्चात पंचायती राज एवं ग्राम सभा
डॉ. संजय कुमार मिश्र 85

» पंडित नेहरू की यादगार भूले
डॉ. रोहताश जमदग्नि 87

» राजनीतिक जनसंपर्क में सोशल मीडिया : एक अध्ययन
हरिओम कुमार 91

» अम्बेडकर की दृष्टि में लोक प्रशासन
डॉ. कुमार विपुल 94

» उच्च तथा निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन
ममता प्रजापत 96

» बदलती अर्थव्यवस्था की केंद्रीय भाषा
डॉ. राम बिनोद रे 99

» भारतीय धर्म दर्शन में ईश्वर विचार : अवधारणा एवं विकास
अर्जुन कुमार रमण 104


SELF ATTESTED

अक्षर वार्ता
ISSN 2349-7521
Vol - XVI, Issue - X, August - 2020 (Part- II)
"AKSHARWARTA"
Monthly International Referred Journal

# बाज़ार के बवंडर में स्त्री

डॉ. अखिलेश गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (तदर्थ), हिंदी विभाग, गुरू घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छ. ग.

सामाजिक, सास्कृतिक और राष्ट्रीय हित तथा उसकी सुरक्षा के प्रति अत्यधिक सचेत और सक्रिय निराला अपने निजी लाभ के प्रति बेहद उदासीन रहे। व्यक्तिगत सुख के बदले राष्ट्रीय हित को वह सर्वोपरि मानते थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी सारी कविताएँ निर्वैयक्तिक हैं। बल्कि उनकी कविताओं में निर्वैयक्तिकता के अलावा वैयक्तिकता भी एकदम निखरे हुए रूप में मिलती है। मसलन, उनकी लम्बी कविता 'सरोज-स्मृति' अपनी पुत्री सरोज के वियोग में लिखी जाने के कारण नितांत वैयक्तिक है, लेकिन उसमें निहित सामाजिक आदर्श उसे निर्वैयक्तिक बना देता है-

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका !
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय'[1]

पुत्री-वियोग और इस दुख की बेला में अपनी स्मृतियों में उसे साक्षात पाकर उसके हित के लिए कभी कुछ न कर सकने की स्थिति पर कवि का आत्मग्लानि से भर जाना- यह कुछ ऐसा मार्मिक पक्ष है, जिसे पढ़ते हुए अक्सर किसी भी पिता को अपनी पुत्री का अक्स इसमें दिखता है और कुछ देर ठहर कर कवि की इस पीड़ा को वह स्वयं पर आरोपित कर लेता है। व्यक्तिगत हित के लिए आवश्यकता से अधिक साधन जुटाने का निहितार्थ असहाय और निरन्तर संघर्षशील व्यक्तियों का हक छीन लेने से है। इसलिए छल-छद्म और शोषण पर आधारित अर्थागम के उपायों को जानकर भी वह सिमट कर रह जाते हैं। ऐसे समय में जहाँ चारों-ओर लाभ-लोभ और लूट-खसोट की संस्कृति हावी है; निराला की सर्जनात्मकता इस बात में है कि सामाजिक हित के लिए व्यक्तिगत हित को तिलांजलि देते हुए उसे शब्दों में ढालकर औरों को भी सचेत करने में वह सक्षम हो जाते हैं। उनकी इस आत्मग्लानि में इतनी कशिश है कि वह नितान्त वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक मान्यता हासिल कर लेती है। यूनानी मिथकीय चरित्र के मारफत बच्चन सिंह ने निराला के संघर्षशील व्यक्तित्व को लक्षित करते हुए कहा है कि 'निराला का संपूर्ण जीवन ही प्रमथ्युगाथा है। अग्नि लाने का काम उसी ने किया था।'[2]

दुर्भाग्य यह है कि छल, छद्म और शोषण पर आधारित उपभोक्ता संस्कृति आज पूरे देश में अपना जाल बिछा चुकी है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक आते-आते देश का आर्थिक ढाँचा जो जनता की साधारण जरूरतों की पूर्ति तक सीमित था, उसे समाजवाद के लक्ष्य से भटकाकर नव-उदार पूँजीवाद और बाजारवाद की ओर मोड़ दिया गया।

आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण के नाम से आज जिसे प्रचारित किया जा रहा है-दरअसल यह उपभोक्ता संस्कृति है, जिसकी गिरफ्त में अब पूरा निम्न और मध्यवर्गीय समाज है और स्त्री इसकी सबसे आसान शिकार है।

पालतू कबूतर के सहारे शिकारी ढेरों जंगली कबूतर फाँस लिया करते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम स्त्रियों के साथ इसी तरह का व्यवहार अपना रहे हैं। सौन्दर्य-प्रतियोगिताओं में भारतीय नारियों का दबदबा बढ़ता-सा प्रतीत हो रहा है, तो इसके पीछे का भेद कमोबेश अधिसंख्य भारतीय जनता के सामने खुल चुका है। भारतीय बाजार वैश्विक अर्थव्यवस्था को अब प्रभावित करने लगा है। रसोई की चारदीवारी में घिरी अपने देश के लड़कियों की झोली में भी इसलिए विश्वसुंदरी का खिताब शामिल होने लगा है। बहुराष्ट्रीय निगम महज अपना उत्पाद भारतीय बाजार में खपाने के लिए गौर वर्ण को सुन्दरता का मानक बताकर देश की ऐसे लड़कियों को इसमें चयनित करता है। उनके द्वारा निर्धारित सुन्दरता की सूची में शरीक लड़कियाँ आधुनिक दृश्य-श्रव्य यंत्रों (टेलीविजन और इंटरनेट) पर गोरेपन की क्रीम को हीनताबोध से छुटकारा दिलाने का रामबाण उपाय बताते हुए बारम्बार यह दुहराती हैं कि कालेपन के कारण देश की नौजवान युवतियाँ नौकरियों में असफल रह जाती है। व्यक्तित्व अनाकर्षक लगने पर लोगों का मिलना-जुलना कम हो जाता है या फिर शादी न हो पाने का ठीकरा भी रंगभेद पर फोड़ती है।

जैसा कि मार्क्स ने कहा था कि 'जहाँ 'सरप्लस' होगा, वहाँ सौन्दर्य नहीं रह सकता।' सौन्दर्य के नाम पर बहुराष्ट्रीय निगमों को 'सरप्लस' हथियाने का खेल खेलते हुए देख बेशक मार्क्स की यह चेतावनी याद आती है। कम्पनियाँ महज सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री बेचने तक सीमित नहीं हैं। शारीरिक सौष्ठव के बहाने उनकी खाद्य-सामग्रियों और स्वास्थ्य संबंधी दवाइयों तक में उन्होंने सेंधमारी कर लिया है। हीनताबोध से निजात के नाम पर स्त्रियों में हीनताबोध पनपाना उनका खास मकसद है। रंगभेद, दुबलापन और बौनेपन की व्याधियों से संबंधित हौआ ने स्त्री की आस्था को बाजार पर घनीभूत ढंग से एकाग्र कर दिया है। पुरुष वर्ग आज भी इससे अधिकतर अछूता ही रहा है। इससे अधिक दुखद स्थिति क्या हो सकती है कि बाजार ने स्त्रीह की कारुणिक छवियों को भी अर्थागम का साधन बना लिया है।

कविता स्त्री की इन विडम्बनाओं से विमुख नहीं है। अपने समय में बाजार के तमाम वैश्विक संजालों से वह निष्कवच मुठभेड़ कर रही है-

'दिल्ली में जी.बी. रोड पर/ एक स्त्री/ ग्राहक पटा रही है।/ पलामू के एक कस्बे में/ नीम उजाले में एक नीम हकीम/ एक स्त्रीड पर गर्भपात की/ हर तरकीब आजमा रहा है।/ बाड़मेर में/ एक शिशु के शव पर/ विलाप कर रही है एक स्त्री / बंबई के एक रेस्त्राँ में/ नीली-गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने/ अपना आखिरी कपड़ा उतार दिया है/ और किसी एक घर में/ ऐसा करने से पहले/ एक दूसरी स्त्रीह/ लगन से रसोईघर में/ काम समेट रही है।/ महाराजगंज के ईंट भट्ठे में/ झोंकी जा रही है एक रेजा मजदूरिन/ जरूरी इस्तेमाल के बाद/ और एक दूसरी स्त्री / चूल्हे में पत्ते झोंक रही है/ बिलासपुर में कहीं।/ ठीक उसी रात उसी समय/ नेल्सन मण्डेला के देश में/ विश्व सुंदरी प्रतियोगिता के लिए/ मंच सज रहा है।'[4]

('रात के संतरी की कविता' : कात्यायनी)

जीवन के अलग-अलग हिस्सों से हासिल विषम और तिक्त जीवनानुभवों के खण्ड दृश्यों को आपस में जोड़कर कात्यायनी सार्वजनीन संदर्भ में स्त्रीयों की यातना, शोषण और त्रासदी से उपजी कारुणिक अवस्थाओं का मानो एक लैंडस्केप प्रस्तुत करती हैं। स्त्रीत-संबंधी कविता-कर्म के क्षेत्र में अर्चना वर्मा, अनामिका, निर्मला पुतुल, चन्द्रकला त्रिपाठी, रंजना जायसवाल, स्नेहमयी चौधरी, सुनीता जैन और पद्मा सचदेव जैसी कवयित्रियों की दीप्त अवस्थिति स्त्रियों की हालत को सुधारने में असरदार साबित हो रही है। समकालीन कवि भी स्त्रि यों को पराधीन बनाने वाली इस नयी बाजारवादी व्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हुए कारोबारियों द्वारा स्त्रियों के दुख-दर्द से लाभ उठाकर उसे भुनाने की असल प्रवृत्ति को बेनकाब कर रहे हैं और समाज में स्त्री -पुरुष समानता, मानवीय आस्था, प्रेम और अपनत्व की आस बँधा रहे हैं; ताकि बाजार के चंगुल से समाज की आधी आबादी को फँसने से बचाया जा सके-

'इस अंधकार भरे समय में
जब कृष्ण, भक्ति और प्रेम पर
कारोबारियों का कब्जा है
मेरे पास अपनत्व की भाषा है
शायद यही मेरी कविता है उसके लिए।'

('एक कविता उसके लिए' : प्रेमचंद गाँधी)

फिलीस्तीन-इजराइली संघर्ष में युद्ध और भारी रक्तपात के बीच पली-बढ़ी और विस्थापन का दर्द झेलने वाली फिलीस्तीनी कवयित्री सूसन अबुलहवा मूलतः प्रेम की पक्षधर रही है। इसके बावजूद बाजार उनकी कविताओं में किसी आतंक से कम नहीं है--

'दिन में मैं अपने चेहरे को
पोशाक की तरह पहनती हूँ
काजल से मैं रचती हूँ उस सौंदर्य को
जो तुमने मेरी आँखों को दिया
और रँगती हूँ अपने होंठ
कि शायद तुम इस हिजाब के नीचे
उन्हें पाकीजगी भरा आकार दे दोगे

मैं किस्मत का पूरा बोझ लिए
बिच्छुओं के डंक जैसी धूप में
घूमती हूँ बाजारों में'

बहरहाल, इस बवंडर में आज केवल भारत ही नहीं है, बल्कि इसका संजाल वैश्विक है। लेकिन बाजार की इस भौतिकता ने जहाँ प्रेम की निरंतरता को भंग कर उसे महज उत्तेजना की वस्तु के रूप में बदल दिया है, वहीं आज के कवि के लिए प्रेम की एक झिलमिलाती-सी रौशनी भी इसकी काट के लिए किसी संजीवनी से कम नहीं है-

'इसी भीड़ में सम्भव है प्रेम
इसी तुमुल कोलाहल में
जब सूरज तप रहा है आसमान में
जींस और टी-शर्ट पहने वह युवती
बाइक पर कसकर थामे है
युवक चालक की देह

इसी भीड़ में
सम्भव है प्रेम !'

('इसी कोलाहल में' : पंकज चतुर्वेदी)

संदर्भ सूची:-

1. रामविलास शर्मा (सं.), 'निराला राग-विराग', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ. 80
2. बच्चन सिंह, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 140
3. पंकज चतुर्वेदी, 'निराशा में भी सामर्थ्य', आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2013, पृ. 251
4. कात्यायनी, 'इस पौरुषपूर्ण समय में', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ. 19
5. वेबलिंक https://www.youtube.com/watch?v=2be1hZsjyBg
6. वेबलिंक https://samalochan.blogspot.com/2017/02/blog-post_13.html
7. वेबलिंक http://www.anunad.com/2009/02/blog-post_23.html



SELF ATTESTED